आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 2/अंक 1/मार्च 2022
Received:09/03/2022; Accepted:18/03/2022; Published:24/03/2022

वर्तमान हिंदी कथा-साहित्य में अभिव्यक्त 'तृतीयलिंगी' समुदाय

हर्षिता द्विवेदी
शोधार्थी, हिंदी विभाग
भाषा ,साहित्य और संस्कृति अध्ययन संस्थान ,
भारतीय भाषा केंद्र ,
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली-110067
harshi26_lle@jnu.ac.in

हर्षिता द्विवेदी,**वर्तमान हिंदी कथा-साहित्य में अभिव्यक्त 'तृतीयलिंगी' समुदाय** , आखर हिंदी पत्रिका, खंड 2/अंक 1/मार्च 2022, (43-49)

की-बर्ड्स- कथा-साहित्य, लैंगिक असमानता, लिंगभेद, पितृसत्ता, समाजीकरण किन्नर, हिजड़ा, छक्का, थर्डजेंडर, हिंदी साहित्य, हाशिए का समुदाय, मिथक, किन्नर समाज, भारतीय संविधान|

'किन्नर या हिजड़ा' शब्द सुनते ही हमारे जेहन में ऐसे लोगों की छवि उतर आती है, जिनकी इठलाती चाल, भड़कीला श्रृंगार और ताली बजाते हाथ एक अलग ही दुनिया की तरफ इशारा करते हैं| हम तमाम सवालों-जवाबों के इर्द-गिर्द डूबने-उतराने लगते हैं| ये लोग विवाह, बच्चे की पैदाइश, बस, ट्रेन, पार्कों और अन्य सार्वजनिक स्थलों पर नाचते-गाते या भीख माँगते दिख जाते हैं| हम यह सोचने के लिए कभी मजबूर ही नहीं होते कि ऐसा क्या कारण है कि हजारों-लाखों की संख्या वाला एक समुदाय सड़कों पर जीवन-यापन के लिए अभिशप्त है| मनुष्य के रूप में जन्म लेने वाला यह समुदाय आज भी तमाम बुनियादी सुविधाओं को पाने में, सामान्य नागरिक का दर्जा पाने में असफल रहा है| आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं हम, परन्तु देश की

आबादी का लगभग 20 लाख की संख्या का एक समुदाय आज भी बिजली, पानी, चिकित्सा, शिक्षा और जीवन जीने की तमाम बुनियादी जरूरतों की पूर्ति/आपूर्ति के लिए जूझ रहा है| वो स्कूल में सामान्य छात्रों की तरह शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते, रोजगार के अनुकूल अवसरों का लाभ नहीं उठा सकते या अन्य सार्वजनिक स्थलों पर सहज उपस्थिति नहीं दे सकते| हमारे दिमाग में अश्लीलता की एक परत चढ़ी हुई है, हम सामान्य नज़र से उन लोगों को देख ही नहीं सकते| सदियों से उन्हें बाँटकर और हर सुख-सुविधा, अधिकार से वंचित रखना मानवीय गरिमा के ख़िलाफ़ और वीभत्स सोच को प्रदर्शित करता है|

इतिहास की पड़ताल और उनके अध्ययन से यह पता चलता है कि जाति, वर्ग, नस्ल. लिंग और भाषा आदि की तरह ही यौनिक समुदाय और उनकी पहचान एक सांस्कृतिक 'प्रोडक्ट' है जो धर्म, राज्य, औपनिवेशिक सत्ताओं व विचारों, जैव-वैज्ञानिक चिकित्सा या सर्जरी इत्यादि के मानकीकरण और स्तरीकरण द्वारा तय होता है| लेकिन इसी के साथ-साथ राजनीतिक और बौद्धिक गलियारों में इस लैंगिक स्तरीकरण और अस्मिता की लड़ाई का पुरजोर विरोध इसलिए भी होता आया है क्योंकि पितृसत्तात्मक मानसिकता के लोग यह समझते हैं कि उनकी सत्ता और शक्ति उनके हाथों से निकल न जाए| अस्मितावादी या 'लैंगिक पहचान' का संघर्ष हमेशा से प्रभुत्ववादी वर्ग के लिए खतरा रहा है| 'लैंगिक अस्मिता' की लड़ाई लड़ रहे लोगों ने अपने वर्ग के लिए नई पहचान और नाम स्वीकार करने प्रारंभ कर दिए हैं| "इस प्रकार के स्तरीकरण से पैदा होने वाले बहिष्करण और भेदभाव के विरोध में दमित यौन अस्मिताओं के लिए पहचान सूचक नए नाम भी दिए जाते रहे हैं, जैसे हिजड़ों के लिए 'किन्नर' पद का या वर्तमान में 'थर्ड जेंडर' पद का प्रयोग हमारे यहाँ किया जा रहा है| उत्तर-आधुनिक वैश्विक समाज में यौनिक और लैंगिक आधार पर कल तक पदच्युत माने जाते रहे लोग आज अपनी विशिष्ट पहचान और सार्वजनिक-निजी दुनिया में अपनी उपस्थिति, अपनी आव़ाज और अपनी अस्मिता के वाजिब अधिकारों की वकालत कर रहे हैं|"[1] अपनी पहचान पर बल देने और उसे स्थायी बनाए रखने के क्रम में समाज में हमेशा से कमजोर और धनहीन वर्ग को हाशिए पर धकेला जाता रहा है, 'किन्नर समुदाय' उनमें से एक माना जा सकता है| "संतान कैसी भी हो, उसमें कैसी भी शारीरिक, मानसिक कमी क्यों न हो, माता-पिता को अपनी सन्तान हर हाल में भली लगती है, प्यारी होती है, फिर भले ही वह संतान हिजड़ा ही क्यों न हो| फिर भी सामाजिक परिस्थितियों, खानदान की इज्जत-मर्यादा, झूठी शान के सामने अपने हिजड़े बच्चे से उसके जन्मदाता हर हाल में छुटकारा पा लेना चाहते हैं|"[2]

हिंदी साहित्य में 'तृतीयलिंगी समुदाय' को लेकर बहुत ज्यादा कुछ नहीं लिखा जा सका है, उसका कारण यह है कि हाशिए के समाज को लेकर लिखा गया साहित्य बहुत पुराना नहीं है| और दूसरी बात यह भी है कि साहित्य रचना हमेशा पढ़े-लिखों के द्वारा हुई, जो लोग शिक्षित या साक्षर नहीं थे, वे अपनी बात कहने के

क्रम में कहीं बहुत पीछे छूट गये| पैदा होने के साथ ही उनको परिवार, समाज, शिक्षा, सम्पत्ति के अधिकार, सामाजिक अधिकार और अन्य सभी मानवजीवन के अधिकारों से वंचित किये जाते रहे हैं| "सामाजिक स्तर पर बहिष्कार का मतलब यह हुआ कि हिजड़े लोग अपने परिवार के साथ और समाज के साथ कोई रिश्ता नहीं रख सकते| वे शादी नहीं कर सकते या एक परिवार के रूप में किसी के साथ नहीं रह सकते क्योंकि समाज इस तरह के रिश्तों को मान्यता नहीं देता| हिजड़ों की आत्मा एक स्त्री की आत्मा होती है और मातृत्व और परिवार की चाह में हिजड़े कभी-कभी संयोगवश टकरा गए बच्चों को पालने-पोषने भी लगते हैं|"[3]

हिंदी में 2002 ई० में नीरजा माधव 'यमदीप' उपन्यास लिखकर व्यवस्थित रूप में 'किन्नर विमर्श' या 'तृतीयलिंगी' विमर्श की नींव रखती हैं| 2008 में अनुसूया त्यागी का 'मैं भी औरत हूँ' चिकित्सीय समस्या पर आधारित उपन्यास था जो मूलतः 'लैंगिक विकलांगता' पर आधारित था| 2010 में महेंद्र भीष्म ने 'किन्नर कथा' लिखकर 'लैंगिक विमर्श' के आन्दोलन को एक नई हवा दी| 'किन्नर कथा' उपन्यास एक कुलीन वर्ग में पैदा हुई सोना नामक किन्नर पर आधारित है, दूसरा मुख्य चरित्र तारा का है, जिनके माध्यम से 'किन्नर समाज' की सामाजिक संरचना के ताने-बाने को बहुत सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया गया है| महेंद्र भीष्म 'किन्नर कथा में लिखते हैं- "प्रत्येक हिजड़ा अभिशप्त है, अपने परिवार से बिछुड़ने के दंश से| समाज का पहला घात यहीं से उस पर शुरू होता है| अपने ही परिवार से, अपने ही लोगों द्वारा उसे अपनों से दूर कर दिया जाता है| परिवार से विस्थापन का दंश सर्वप्रथम उन्हें ही भुगतना होता है|"[4] परिवार और समाज से विस्थापन का दर्द किन्नर समाज को आजीवन भुगतना होता है| 2013 में प्रदीप सौरभ ने 'तीसरी ताली' लिखकर 'तृतीयलिंगी' विमर्श के मुद्दे को नई हवा दे दी| अब बात सिर्फ 'हिजड़ा समाज' तक सीमित नहीं थी बल्कि 'ट्रांसजेंडर', 'लेस्बियन', 'गे' जैसे विषयों पर भी खुलकर बात की गई| देश की राजधानी दिल्ली जैसे बड़े कैनवास पैर लिखे गए इस उपन्यास की भाषा काफी हद तक पत्रकारिता से प्रेरित लगती है परन्तु तथ्यात्मक रूप से यह बहुत मजबूत कथानक और पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है| 2013 ई० में ही पारस दासोत कृत 'मेरी किन्नर केन्द्रित लघु कथाएँ' नाम से हिंदी का प्रथम लघुकथा संग्रह प्रकाशित हुआ| बुनियादी तौर पर यह लघुकथा संग्रह मिथकीय कथाओं और मान्यताओं पर आधारित है| ईश्वर से उसकी कमियों और गलतियों पर सवाल करने और जवाब माँगने की हिम्मत यहाँ 'किन्नर' ही कर सकता है क्योंकि समाज का सबसे ज्यादा सताया हुआ भी वह ही है| 2014 ई० में प्रकाशित निर्मला भुराडिया का उपन्यास 'ग़ुलाम मंडी' अपने आपमें बहुत बेहतरीन उपन्यास कहा जा सकता है| 'किन्नर' समुदाय के साथ-साथ नर्क भोगती नारियों की स्थिति पर भी यह बहुत सूक्ष्म स्तर पर प्रकाश डालता है| "बचपन से ही देखती आई हूँ उन लोगों के प्रति समाज के तिरस्कार को, जिसे प्रकृति ने तयशुदा जेंडर नहीं दिया| इसमें इनका क्या दोष? ये क्यों हमेशा त्यागे गये, सताए गए और अपमान के भागी बने? इन्हें हिजड़ा, किन्नर, बृहन्नला

आदि कई नामों से पुकारा जाता है, मगर हमेशा तिरस्कार के साथ ही क्यों? आखिर ये बाकी इंसानों की तरह मानवीय गरिमा के हक़दार क्यों नहीं? बस यही प्रश्न हमेशा से दिमाग में था| इसलिए इस नॉवेल में किन्नरों के पात्र रचे गये हैं, और उनके बारे में उनकी तरफ से लिखा गया है, समाज की ओर से नहीं| मुख्यकथा के समानांतर यह कथा चलती है, बल्कि यूँ कहें एक मोड़ पर उसी में घुल-मिल जाती है|"[5]

2010 ई० के बाद 'किन्नर समुदाय' को लेकर जो कुछ भी रचा गया, वह अत्यंत प्रासंगिक और आवश्यक था| आज जब दुनिया का तमाम बौद्धिक वर्ग 'हाशिए' की लड़ाई लड़ने के लिए एक मंच पर एकत्रित होता दीख रहा तब भारत में मुख्यधारा में उनके शामिल किये जाने और स्वीकार्यता की लड़ाई आज भी जारी है| मिथकीय कथाओं में 'बृहन्नला', 'अरावनी' या शिखंडी' की बात तो हम करते हैं पर उनके विषय में बहुत कम लोग जानते हैं कि ये ओढ़ी हुई 'पहचान' से ज्यादा कुछ नहीं थे| जिनका अपने मतलब के लिए समय-समय पर समाज और राज्य ने इस्तेमाल किया| मुग़ल शासकों के हरम और सेना में उनका प्रयोग महिलाओं की रखवाली और गुप्तचरी के लिए भी किये जाने के उदाहरण मौजूद हैं| ख्वाज़ासरा की परम्परा दिल्ली सल्तनत के दरबारों में भी मौजूद रही, जिसका सुबूत दिल्ली के महरौली में मौजूद 'हिजड़ों की खानकाह' है| जहाँ आज भी जुमे की नमाज अता करने के लिए प्रत्येक शुक्रवार खानकाह पर उनकी भीड़ देखी जा सकती है| 2016 ई० में चित्रा मुद्गल कृत 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नालासोपारा' में विनोद उर्फ़ बिमली उर्फ़ बिन्नी के माध्यम से उन्होंने एक गुजराती परिवार में पैदा हुए बच्चे की कहानी को उकेरा है| फ़्लैश बैक में और पत्रों के माध्यम से अभिव्यक्त इस उपन्यास में भारतीय समाज के सम्पूर्ण वांग्मय की प्रस्तुति देखी जा सकती है| आज जब मनोवैज्ञानिकता की बात को स्वीकार करने की बारी आती है तो बहुरत सारे लोग इससे बचते हैं| चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास के माध्यम से राजनीति की गंध, विकृत सोच, समाज की गिरी हुई मानसिकता, स्वयं उनके समाज की वास्तविक स्थिति को दर्शाने का प्रयास किया गया है| "लोकजीवन में 'हिजड़ा' शब्द गाली का प्रतीक बन चुका है| समाज में शारीरिक रूप से कमजोर, पौरुषहीन व्यक्ति को हिजड़ा कहकर परिवार और समाज के लोगों द्वारा धिक्कारना और अपमानित करना सामान्य सी बात है| हिजड़ा के लिए उनका अपना परिवार हो या समाज, किसी के भी मन में दया, प्रेम, करुणा का कोई भाव नहीं होता है| उनकी न तो कोई सामाजिक हैसियत होती है और न ही उनके श्रम का कोई महत्त्व या मूल्य समझा जाता है| उनके जीवन संसार में झाँक लेने में और उनके दुःख-दर्द, संघर्ष और मुसीबतों के बारे में जानने की न किसी को उत्सुकता है और न ही जरूरत| भावनात्मक धरातल पर समाज का कोई जुड़ाव भी उनसे नहीं हो पाता है|"[6]

संविधान, प्रशासन और अन्य मुद्दों पर विचार करें तो पाते हैं कि स्थिति अभी भी बहुत खराब है| 1871 ई० का अंग्रेजों का बनाया 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' जिसके तहत 'तृतीयलिंगी समुदाय' प्रतिबंधित कर दिया गया| आजादी के कई सालों बाद उन्हें इस प्रतिबंध से मुक्ति तो मिल गई, लेकिन वे आजादी के कई दशक बाद भी सम्मानजनक स्थान प्राप्त न कर सके| 1094 ई० में उन्हें 'स्त्री या पुरुष' के रूप में 'मतदान' का अधिकार प्राप्त हुआ| 2004 के बाद एक लम्बी लड़ाई के बाद 2009 में उन्हें 'तृतीयलिंगी' के रूप में मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ| 2014 उन्होंने 'अन्य' या 'तृतीय' के रूप में पहली बार मतदान किया| 15 अप्रैल, 2014 में सुप्रीम कोर्ट ने उन्हें 'थर्डजेंडर' के रूप में मान्यता दी| 2016 में एक 'पर्सनल अमेंडमेंट' के रूप में शिवा त्रिची का बिल अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है| 2018 में 'अधिनियम 377' को उच्चतम न्यायलय ने जहाँ आंशिक रूप में खतम किया वहीं 'प्रोटेक्शन ऑफ़ राइट्स बिल 2019' के आधार पर 'तृतीयलिंगी समुदाय' को पूर्ण रूप में समाज का हिस्सा मान लिया गया| यह एक छोटा सा इतिहास है उस समाज का, जिसकी आबादी लाखों में है| जिसकी परम्पराएँ, मान्यताएँ दुनिया के अन्य समाजों से बहुत अलग हैं| जिनकी स्वीकार्यता इतने बड़े विश्व में महज गिनती के देशों में है|

सुभाष अखिल कृत 'दरमियाना', भगवंत अनमोल कृत 'जिन्दगी 50-50', राकेश शंकर भारती का कहानी संग्रह 'इस जिन्दगी के उस पार', महेंद्र भीष्म कृत 'मैं पायल', शरद सिंह कृत 'शिखंडी', गिरिजा भारती कृत 'अस्तित्त्व', किरन सिंह की कहानी 'संझा', शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'बिंदा महराज', राही मासूम रजा की कहानी 'खलीक अहमद बुआ', गरिमा संजय दुबे की 'पन्ना बा' जैसी रचनाएँ अत्यंत महत्त्पूर्ण मानी जा सकती हैं| साहित्य में किन्नर उपेक्षित ही रहे हैं, समाज में उन्हें ऐसी कोई जगह नहीं दी जा सकी| "विषम लैंगिक मानक से परे किसी भी यौन संबंध को समाज में स्वीकृति नहीं मिल पाती| हिजड़े के साथ यदि कोई सभ्य व्यक्ति घर बसाना भी चाहे तो इसे समाज कभी स्वीकार नहीं करता|"[7] अभी तक का जो भी साहित्य रचा गया है, वह भ्रम, मिथक और कल्पना से भरपूर है, वास्तविकता यह है कि आलोच्य समुदाय जब तक स्वयं उनसे नहीं जुड़ता या उन पर बात नहीं करता तब तक असल स्थिति का सामने आने में समय है| साहित्य रचने वाला स्वयं भी मनुष्य है और मनुष्य की अपनी दुर्बलताएँ होती हैं| उसकी सोच, पृष्ठभूमि, विचारधारा और सामाजिक स्थिति का प्रभाव उसके लेखन पर पड़ना स्वाभाविक है|

पिछले 20-25 सालों में स्थिति में बहुत परिवर्तन आया है, अब बात सिर्फ उनकी बुनियादी जरूरतों तक सीमित नहीं है| सर्कार और संविधान ने ठीकठाक स्थिति में ला खड़ा किया है उनको| भाषा, साहित्य, संस्कृति और सामान्य सामाजिक व्यवहार किसी भी राष्ट्र की उन्नति का सूचक होते हैं| शिक्षा और रोजगार को

लेकर बड़े स्तर पर काम किये जाने की आवश्यकता है| 'अधिकारों के संरक्षण' के विषय पर अधिकार लागू कर दिए जाने भर से स्थिति नहीं सुधरने वाली, कागज रंगकर साहित्य सृजन का दिखावा भी स्थिति नहीं बदलने वाला| दिल्ली, मुंबई, हैदराबाद, चेन्नई या कोलकाता जैसे बड़े शहरों में 'नकली किन्नरों' की समस्या बहुत बड़ी समस्या बनकर उभरा है पिछले कुछ सालों में| इन नकली किन्नरों की वजह से 'देह व्यापार' की स्थिति में इजाफ़ा हुआ है, गद्दी और गुरु बनने की लड़ाई, तस्करी और अन्य अनैतिक कार्यों में लगातार बढ़ोत्तरी हुई है| यह समाज कल भी संदेहास्पद स्थिति में था और आज भी उस स्थिति में कोई ख़ास परिवर्तन नहीं आया है| अभी भी लोग अपने बच्चों के मन में उनके प्रति डर भरते हैं, सामान्य रूप से सीधे मुँह बात करना कोई आज भी नहीं पसंद करता| किन्नरों की आपसी लड़ाई और रंजिशें जगह-जगह पुलिस थानों तक खबर के रूप में पहुँचने लगी हैं| लूटपाट की तमाम घटनाओं में भी इन्हें दोषी पाया जाने लगा है, इसकी सबसे बड़ी वजह नकली किन्नर हैं|

साहित्य सृजन इनकी स्थिति में परिवर्तन के लिए बड़ा कारक हो सकता है, लेकिन जरूरी है कि उन्हें स्वयं अपनी बात कहने का अवसर दिया जाए| प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा और उसके बाद रोजगार के अवसरों तक उनके साथ सामान्य नागरिक जैसा व्यवहार किया जाए| लैंगिक विकृति या विकलांगता कोई दोष नहीं है, उन्हें अश्लीलता के चश्मे से देखना बंद किया जाना चाहिए| लैंगिक विकलांगता, मानसिक विकलांगता नहीं है, उन्हें कौशल विकास का प्रशिक्षण देकर समाज के योग्य बनाया जाना चाहिए| जब हम समानता की बात करते हैं, विश्व-बंधुत्व या वसुधैव कुटुम्बकम की बात करते हैं तो हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि लाखों की आबादी वाले लोगों को हाशिए पर रखकर हम इस विचारधारा को सम्पादित करने में असफल रहेंगे| समाजीकरण की प्रक्रिया में स्त्री, पुरुष और 'अन्य' के धोखे को खतम करने की आवश्यकता है| सार्वजनिक स्थलों पर उन्हें सामान्य मनुष्य के रूप में देखने का पाठ हमें अपनी आने वाली पीढ़ियों को पढ़ाना पड़ेगा अन्यथा हम बराबरी वाले स्वस्थ समाज का निर्माण करने के लक्ष्य को प्राप्त न कर सकेंगे|

संदर्भ-

1. थर्ड जेंडर: कथा आलोचना, संपादक डॉ० एम्. फ़ीरोज खान, अनुसंधान पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2017, पृष्ठ-10.
2. किन्नर कथा, महेंद्र भीष्म, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ- 45.
3. थर्ड जेंडर: कथा आलोचना, डॉ० एम् फ़ीरोज खान, अनुसंधान पब्लिशर्स, कानपुर, 2017, पृष्ठ-21.
4. किन्नर कथा, महेंद्र भीष्म, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ- 41-42.

5. गुलाम मंडी, निर्मला भुराडिया, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ- 7-8.
6. थर्ड जेंडर:कथा आलोचना, डॉ० एम्. फ़ीरोज खान, अनुसंधान पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2017, पृष्ठ-108.
7. वही, पृष्ठ-41.

****